रजि. नं. पी.बी./जे.एल–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

# आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–71, अंक : 13, 3/6 जुलाई 2014 तदनुसार 22 आषाढ़ सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

# लोकोऽयं कर्मबन्धन : (कर्म प्रधान जहान)

*–ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ*

**मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।**
**पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत।।**

**–ऋ. 7/32/13**

**शब्दार्थ– अखर्वम्**= क्षुद्रतारहित **सुधितम्**= सुचिन्तित **सुपेशसम्**= सुन्दर रूप–रेखावाला **मन्त्रम्**= मंत्र गुप्त परिभाषित विचार **यज्ञियेषु**= यज्ञ योग्य, यज्ञ के अधिकारियों में **आ**= पूर्णरूप से, **दधात** = डालो। **पूर्वी**:+**चन**= पूर्व से प्राप्त **प्रसितय:**= बन्धन **तम्**= उसको **तरन्ति**= लांघ जाते हैं, छोड़ जाते हैं, **य:**= जो **इन्द्रे**= परमेश्वर के निमित्त **कर्मणा**= कर्म से **भुवत्**= समर्थ होता है।

**व्याख्या**– पता है, पाप क्या होता है? कुकर्म क्या होता है? मनु महाराज 8/82 में कहते हैं **नानृतात्पातक परम्** झूठ से बढ़ कर गिराने वाला (पाप) कोई नहीं हैं। पातक कहो, पाप कहो, एक बात है। पातक जितने हैं, प्राय: उनमें दूसरों के साथ सम्बन्ध होता है, मिथ्या=बोलने में भी दूसरे की, श्रोता की आवश्यकता पड़ती है। चोरी पराए माल की होती है। ब्रह्मचर्य नाश= मैथुन में भी दूसरा चाहिये। दूसरा न हो तो अभिमान क्या और किस के आगे करें।

पाप के आचार से पहले पाप का विचार होता है। विचार अपने मन में होता है, उसको वाणी से उच्चार कर दूसरों तक पहुंचाते हैं। वेद कहता है–विचार हर एक को न दो किन्तु **दधात यज्ञियेष्वा**= जिनमें परोपकार–भावना है, यज्ञ–भावना से जो भावित है, ऐसे सदाचारी धर्मात्मा सज्जनों को विचार दो।

किन्तु वह मंत्र= पिवरी अखर्व हो=क्षुद्र न हो। क्षुद्र विचारों से संकीर्णता उत्पन्न होती है। उससे स्वार्थ उत्पन्न होकर समाज–भावना का विनाश होता है। उच्चाशय के भावों से भरपूर विचार ही संसार के लिये कल्याणकारक होते हैं। साथ ही वह सुधित= सुचिन्तित होना चाहिये ऐसा नहीं कि जो विचार आया, झट से उच्चारण कर दिया। नहीं, उसे सोचिए, उसके अनुकूल–प्रतिकूल सारे पहलुओं पर गम्भीरता से विचार कीजिये। जिसको विचार देने लगो, देख लो कि उसने इसे भली भान्ति धारण कर लिया है, समझ लिया है? अन्यथा यह अपनी अधम बुद्धि से हानि करेगा। जब कोई विचार देने लगो, उसकी भाषा ललित हो, उसके समझाने का ढंग मनोहारी हो। उसे इस रूप में जनता के आगे रखो जिससे वह स्वयं आकृष्ट हो। सुन्दरता सभी को प्रिय है। भगवान भी सत्य और शिव होते हुए सुन्दर हैं। वेद के शब्दों में भगवान स्व:= सु+अस=सुन्दर सत्तावान है। भगवान ने इस सृष्टि में कितना सौन्दर्य भर दिया है। यह जहान कितना रूपवान बनाया। तुम क्यों कुरूप सृष्टि रचो? तुम्हारी सृष्टि भी सुन्दर होनी चाहिये।

जब किसी को विचार देने लगते हैं, तब वे कर्म हो जाते हैं। कर्मों को अनेक ज्ञानी बन्धन का हेतु मानते है। कुछ सीमा तक यह बात है भी सत्य। पशु–पक्षी, कीट पतंग आदि अधम योनियों में पड़े, ज्ञान–प्रकाश से रहित हुये विवशता का जीवन बिता रहे हैं और नाना दु:ख पा रहे हैं, यह क्यों? जब इन्हें कर्म की स्वतंत्रता थी, तब इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके कुकर्म किये, उसका फल यह वर्तमान दुर्दशा है। कर्म से बन्धन मिला, कर्म ही से यह कटेगा, अत: वेद कहता है:–

**पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्।।**

पहले के बंधन उसे छोड़ते हैं, जो प्रभु के निमित्त कर्म से समर्थ होता है।

वासना बंधन का कारण है, जो सांसारिक वासनाओं से वासित होकर कर्म करेगा, वह बंधन में पडेगा, अत: सांसारिक वासनाओं को त्यागो। अब जो कर्म करो, प्रभु के निमित्त करो, अर्थात् अपने आप को भगवान का हथियार बना लो। अब सब इच्छाएं, आकांक्षाएं, अभिलाषाएं छोड़ दो, जो प्रभु कराए, वह करो। प्रभु के कराने से कर्म होने की एक पहचान है– ऐसा कर्मकर्त्ता हानि–लाभ से विचलित नहीं होता क्योंकि उसे विश्वास होता है कि प्रभु जो करते हैं, भला करते हैं, जाने, प्रतीयमान हानि में कोई गहरा लाभ छिपा हो। वेद जीवन भर कर्म करने का ही नहीं, कर्म करते हुये जीने की इच्छा का आदेश करता है, यथा–

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। –यजु. 40/2**

इस संसार में मनुष्य आयुभर कर्म ही करता हुआ जीने की इच्छा करे। इस भान्ति तुझ में कर्म लिप्त नहीं होंगे, अर्थात बन्धन का कारण नहीं बनेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है।

यहां कुकर्म और अकर्म का निषेध किया जा रहा है। कर्म किये बिना रहना प्राणी के लिये सर्वथा असंभव है। ऐसी दशा में प्राणी को अपना कर्त्तव्य विचारना चाहिये। उसका विचार करके उस पर आरूढ़ हो जायें। कर्त्तव्य ज्ञान वेद से होगा। वेद भगवान की वाणी है। वेदानुसार कर्म करने वाला मनुष्य यह सोचे कि मैं प्रभु के आदेश का पालन कर रहा हूं। ऐसी निष्ठा–भावना से कर्म करने वाला सचमुच भगवान का करण उपकरण बन जाता है।

प्रभु निमित्त कर्म को निषम कर्म भी कहते हैं। अपना आपा भुलाये बिना यह लगभग क्या, सर्वथा असंभव है। अपना आपा भुलाना–आत्मविस्मरण, आत्मसमर्पण के बिना अशक्य है। कर्म की महिमा बतलाते हुये भी वेद का संकेत उसी ओर है। कोई है जो इस संकेत को ग्रहण करें। **धन्य: स: धन्या च तदीया जननी।**

**–स्वाध्याय संदोह से साभार**

# महर्षि के मानव-मात्र पर चार विशेष उपकार

-खुशहाल चन्द्र आर्य गोबिन्द राम आर्य एण्ड सन्स, 180-सी महात्मा गान्धी रोड (दो तल्ला) कोलकत्ता

वैसे तो महर्षि दयानन्द के मानव-मात्र पर सैंकड़ों नहीं सहस्त्रों उपकार हैं, जिनकी गिनती करनी असम्भव है। इस लेख में केवल चार उपकारों का संक्षिप्त वर्णन करते है, जिनको हम लोगों ने लगभग पाँच हजार वर्षों से प्रायः भुला दिया था। जो इस भाँति हैं:-

१. सब का एक धर्म, वैदिक धर्म ही है:-सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत तक एक ही धर्म वैदिक धर्म को ही विश्व के सभी लोग मानते रहे। अन्दाज पाँच हजार वर्ष पहले महाभारत का भीषण युद्ध हुआ विश्व भर के सभी राजा, महाराजा, योद्धा, विद्वान् व आचार्य युद्ध में काम आ गये। इस स्थिति में अविद्वान, स्वार्थी लोग ही विद्वान समझे जाने लगे और उन स्वार्थी लोगों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वैदिक धर्म के स्थान पर अनेक मत-मतान्तर प्रचलित कर दिये। जिससे लोग धर्म भ्रमित हो गये और विश्व में अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड का ही राज्य स्थापित हो गया और वैदिक धर्म प्रायः लुप्त हो गया और लोगों ने अन्धविश्वास, पाखण्ड रूपी अधर्म को ही धर्म मान लिया। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द अपने जीवन में कठोर तपस्या करके अनेक दुःखों व कष्टों को सह कर अपने सद्‌गुरु स्वामी विरजानन्द की गोद में तीन साल बैठ कर महाभाष्य व अष्टाध्यायी का गहन अध्ययन करके वेदों के सही अर्थ निकाल कर विश्व में वेदों का पुनः प्रकाश किया, और करीब पाँच हजार वर्षों से जो लोग वैदिक धर्म को भूल गये थे और अनेक मत-मतान्तरों में फंस गये थे, उनको पुनः वैदिक धर्म में लाकर उनके जीवन को सफल बनाने के लिए एवं उनके जीवन में सुख व शान्ति लाने के लिए जो वैदिक धर्म पर चलने से ही सम्भव है, उनको वैदिक धर्म पर चलने की प्रेरणा दी और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर, जीव को मनुष्य योनि में भेजता है।

महर्षि दयानन्द के आने से पहसे, लोग अनेक मत-मतान्तरों में बंटे हुए थे, उनके ग्रन्थ भी अलग-अलग थे जो सभी मनुष्यकृत थे। मनुष्य एक अल्पज्ञ प्राणी होने से उनके बनाये ग्रन्थों में भी अलगाव वाद का होना आवश्यक है। परन्तु महर्षि ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा सब सत्य विद्याओं की पुस्तक बतला कर विश्व को यह बतलाया कि मानव-मात्र का एक ही धर्म, ''वैदिक धर्म'' है और एक ही धर्म ग्रन्थ, ''वेद'' है। इन्हीं को मानने से विश्व का कल्याण है अन्यथा परस्पर के भेद-भाव रहना निश्चित है।

२. सब का एक ही उपास्य देव ''ओ३म्'' है:-महाभारत युद्ध से पहले एक ही धर्म ''वैदिक धर्म'' था और एक ही उपास्य देव ''ओ३म्'' था। महाभारत के बाद अज्ञानी, स्वार्थी लोगों ने जहाँ अनेक मत-मतान्तर चला दिये, वहीं अनेक उपास्य देव भी चला दिये। अनेक मतों में शैव, वैष्णव व शाक्‍त मुख्य था। शैवो ने शिव (महादेव) को, वैष्णवों ने विष्णु को और शाक्तों ने दुर्गा, काली, भैरव आदि को अपना उपास्य देव मानना आरम्भ कर दिया। ब्रह्म को सृष्टि वर्त्ता, विष्णु को पालन कर्त्ता और शिव को संहार कर्त्ता बतलाकर तीनों को उपास्य देव मान लिया। श्री राम और श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार बतलाकर ईश्वर के रूप में ही उपास्य देव मानना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार अनेक देवी-देवताओं की उपासना होनी आरम्भ हो गई। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में यह लिखकर भ्रम समाप्त कर दिया कि इन सभी देवताओं के नाम ''ओ३म्'' के ही गुणों व कर्मों के नाम हैं, इसलिए एक ''ओ३म्'' की उपासना करने से ही सभी देवताओं की उपासना हो जाती है। ''ओ३म्'' ही सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही संहार करने वाला भी है इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तीनों ही देव ''ओ३म्'' में ही समाहित हो जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में ''ओ३म्'' के एक सौ नामों का वर्णन है। इसलिए महर्षि ने बताया कि किसी अन्य देवता की उपासना न करके केवल ''ओ३म्'' की ही उपासना उसके गुणों का वर्णन करते हुए, उसके गुणों को अपने जीवन में धारण करने का संकल्प करते हुए सन्ध्या द्वारा करनी चाहिए। यह बतला कर महर्षि ने सभी मनुष्यों को जोड़ने का काम करके मनुष्य-मात्र पर बड़ा उपकार किया है।

३. एक ही नाम ''आर्य'' था:-सृष्टि के आरम्भ में जितने भी मनुष्य थे, वेद ने उनको ''आर्य'' नाम से सम्बोधित किया है और वेदों में लिखा है ''अहं भूमिम् अददाम आर्याय'', इसका अर्थ है कि मैं ईश्वर, धर्मयुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों के लिए पृथ्वी के राज्य को देता हूँ यानि धर्मयुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वाले आर्य ही इस पृथ्वी का आनन्द ले सकते हैं और वेदानुकूल चलते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते है। सृष्टि के आरम्भ में केवल दो किस्म के ही मनुष्य थे। गुण, कर्म, स्वभाव से अच्छे व्यक्तियों को ''आर्य'' कहा जाता था और इसके विपरीत खराब चाल, चलन व व्यवहार वालों को अनार्य कहा जाता था। अनाड़ी शब्द अनार्य का ही विकृत रूप है। महाभारत तक यही प्रथा चलती रही। रामायण, महाभारत की फिल्मों में हमने देखा है कि सीता ने श्री राम को सदैव ''आर्य पुत्र'' और द्रौपदी ने अर्जुन को सदैव ''आर्य पुत्र'' के नाम से सम्बोधित किया है।

महाभारत तक हमारा नाम ''आर्य'' और हमारे देश का नाम ''आर्यावर्त्त'' था। इसके बाद मुसलमानों ने सिन्धु नदी का अभ्रंश करके हमें ''हिन्दू'' और हमारे देश को हिन्दुस्तान कहना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों के आने पर हमें ''इण्डियन'' और हमारे देश को ''इण्डिया'' कहना आरम्भ कर दिया। महर्षि दयानन्द का हमारे ऊपर बड़ा ॠण है कि उन्होंने हमारा प्राचीन नाम ''आर्य'' हमें याद दिला दिया। वेद प्रचार करने तथा परोपकारी कार्यों को करने के लिए महर्षि ने ''आर्य समाज'' की स्थापना सन् 1875 में मुम्बई में की, इससे भी विश्व भर में वेद प्रचार तथा मानव कल्याण के कार्य काफी मात्रा में हो रहे हैं। यह भी महर्षि का हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है।

४. अभिवादन करने का एक ही तरीका ''नमस्ते'' है-वैदिक धर्म का प्रचार जब तक रहा, तब तक सभी लोग परस्पर मिलने पर एक ही अभिवादन ''नमस्ते'' करते थे। बाद में वैदिक धर्म प्रायः लुप्त होने से अज्ञानता वश श्री राम और श्री कृष्ण को स्वार्थी लोगों ने इनको ईश्वर का अवतार बताना आरम्भ कर दिया, तब से जै श्री राम, जै श्री कृष्णा, राम-राम आदि अभिवादन के रूप में कहना आरम्भ कर दिया। मुसलमान भाई ''वाले कुम सलाम'' ''सलाम वाले कुम'' अभिवादन में कहते हैं। अंग्रेज़ भाई गुडमोरनिंग, गुड्नाईट, समय के अनुसार कह कर अभिवादन करते है, जो अपने हृदय का प्रेम-प्रदर्शन करने का उपयुक्त तरीका नहीं जान पड़ता है। महर्षि ने वेदों के आधार पर वही प्राचीन अभिवादन शब्द ''नमस्ते'' को उपयुक्त तरीका नहीं जान पड़ता है। महर्षि ने वेदों के आधार पर वही प्राचीन अभिवादन शब्द ''नमस्ते'' को उपयुक्त बताया और आर्य समाजियों को परस्पर मिलने पर ''नमस्ते'' का प्रयोग करने का आग्रह किया। आर्य जगत् में एक वेदों के प्रकाण्ड विद्वान पं. अयोध्या प्रसाद वैदिक रिसर्च रिस्कोलर हुए हैं, जिनका अधिक जीवन कलकत्ता में ही बीता था। उनको आर्य समाज की तरफ से सन् 1933 में शिकागो में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भेजा गया था। वहाँ चर्चा का विषय अभिवादन के लिए उपयुक्त शब्द क्या होना चाहिए, यही था। सभी देश वालों ने अपने-अपने अभिवादन शब्द के सम्बन्ध में बताया। अन्त में पं० अयोध्या प्रसाद जी ने ''नमस्ते'' की इतनी सुन्दर स्टीक व्याख्या की, जिसको सभी देश वालों ने ''नमस्ते'' को ही अभिवादन के रूप में सब से अधिक उपयुक्त समझा और इसी को सभी ने स्वीकार कर लिया। तभी से विश्व भर में ''नमस्ते'' का ही सब से अधिक प्रचलन है। महर्षि का अभिवादन में ''नमस्ते'' का पुनः प्रचलन करवाना, मनुष्य-मात्र पर एक बहुत बड़ा उपकार है।

## सम्पादकीय......

# माता पिता का संतानों के प्रति कर्त्तव्य

संसार में दो प्रकार के माता-पिता होते हैं। एक वह जो अपने हाथों से सन्तान को अमृत पिलाते हैं और दूसरे वह जो अपने हाथों से सन्तान को विष पिलाते हैं। अब प्रश्न पैदा होता है कि अमृत पिलाने वाले माता-पिता कौन से हैं? जो बच्चों को बचपन से ही अच्छे संस्कार देना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि बच्चा कोई कुचेष्टा करता है, या अनावश्यक जिद् करता है तो वह बालक को दण्ड़ देने में जरा भी संकोच नहीं करते, जो अपने बच्चों की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखते हैं, उसके द्वारा किए कार्य की समीक्षा करते हैं, ऐसे माता पिता अपनी संतानों को अमृत पिलाते हैं। उनकी संतानें फिर कुमार्ग पर नहीं जाती और सदा सुमार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। प्रायः देखा जाता है कि वह अधिकतर परिश्रमी और पुरूषार्थी हुआ करती है और शिक्षाकाल में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचती हैं। ऐसी संतानें न केवल माता पिता का नाम रोशन करती हैं बल्कि देश के लिए भी उनका जीवन प्रशंसनीय होता है और वे देश के अच्छे नागरिक बनकर देश की उन्नति और तरक्की में अपना योगदान देते हैं। धन्य हैं ऐसे माता-पिता जो बच्चों का निर्माण करने में अपनी सब सुख सुविधाओं को त्याग कर अपना जीवन साधनामय बनाते हैं। ऐसे माता-पिता अपनी दिनचर्या ऐसी बनाते हैं जो संतान के लिए प्रेरणादायक बन जाती है। संतान व्यवहार की सभी बातें जैसे समय पर सोना जागना, समय पर अपने सभी कार्य सम्पन्न करना, खान-पान पर ध्यान देना आदि सभी क्रियाकलाप अपने माता-पिता से सीखते हैं।

लोग अक्सर कहा करते हैं कि बच्चे हमारा कहना नहीं मानते और अपनी मनमानी करते हैं। उन लोगों से मैं पूछना चाहता हूं कि उन्होंने बच्चों के निर्माण के लिए कौन सा कष्ट सहन किया है, कौन से अच्छे संस्कार उन्होंने संतानों को दिए हैं, उनकी दिनचर्या को कैसा बनाया है? जिस माता-पिता का जीवन और उनकी दिनचर्या नियमित नहीं होती, जो भोग विलास में पड़कर अपना जीवन बिताते हैं। ऐसे माता-पिता की संतान कभी संस्कारी नहीं बन सकती। ऐसे माता-पिता बाद में पछताते हैं जब उनकी संतान उनके कहने से बाहर हो जाती है। मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरूषो वेद अर्थात् जब उत्तम शिक्षक अर्थात् पहले माता, दूसरे पिता और तीसरे आचार्य मिल जाए तभी बच्चा जीवन के हर क्षेत्र के सफलता को प्राप्त करता है। वे कुल धन्य हैं जिनके माता पिता धार्मिक और विद्वान् हैं। जितना माता से संतानों को लाभ पहुंचता है उतना और किसी से नहीं क्योंकि बच्चों का जीवन प्रभात माता की गोद में गुजरता है। वास्तव में बच्चे की शिक्षा तो गर्भाधान से ही आरम्भ हो जाती है। माता को अति उचित है कि गर्भाधान काल में अपनी दिनचर्या, अपना खान-पान ऐसा बनाएं जिससे गर्भ के अन्दर बच्चे के ऊपर अच्छे संस्कार पड़े। संतान जो कुछ भी है, वह अपने माता पिता के आचार, विचार, आहार, व्यवहार और संस्कार का प्रतिबिम्ब है। माता-पिता के आचार विचार का प्रभाव संतान पर अवश्य पड़ता है। माता चाहे तो बालक को शूरवीर, धीर, गम्भीर, धर्मात्मा, विचारशील, विद्वान्, बना सकती है और अगर माता चाहे तो उसको कायर, मूर्ख और अज्ञानी बना सकती है। दूसरे शब्दों में कहें तो बालक की प्रवृत्ति माता ही बनाती है। यदि माता अपने उत्तरदायित्व को समझ जाए तो संसार के सभी संकट दूर हो सकते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के संस्कारविधि में बताए हुए निर्देशों का पालन करें तो ऐसी ही गुणवान् और श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त संतान पैदा हो सकती है। सुख देने वाली संतान के विषय में यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है कि जो माता-पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य उपदेश के साथ वेद विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं, वे उनके शरीर और आत्मा के बल को बढाने वाले होते है और संतानों के लिए अत्यन्त हितकारी होते हैं। ऐसे माता-पिता की संतानें अपने माता-पिता को सुखयुक्त करती हैं।

नीतिकार ने बहुत ही सुन्दर कहा है कि वह माता बच्चे की शत्रु है और पिता वैरी है जो अपनी संतानों को अच्छी शिक्षा नहीं देते हैं, अच्छे गुणों से युक्त नहीं करते हैं। ऐसी संतान विद्वानों के बीच में ऐसे ही शोभा नहीं पाती है जैसे हंसों के बीच में बगुला शोभा नहीं पाता है। इसलिए माता-पिता का दायित्व है कि वे अपनी संतानों को उत्तम संस्कार देकर उन्हें सुयोग्य और विद्वान् बनाए। ऐसे-ऐसे सुन्दर उपदेश माता और पिता को बच्चों को देने चाहिए ताकि सन्तान सदा आज्ञाकारी रहे। माता-पिता को बच्चे के प्रत्येक कार्य पर नजर रखनी चाहिए, उसकी अच्छी और बुरी आदतों का पता करना चाहिए और उसका सुधार करने के लिए सकारात्मक कदम उठाने चाहिए। बच्चों की किसी भी गलती को अनदेखा नहीं करना चाहिए। जो माता-पिता अपने बच्चों की छोटी-छोटी गलतियों से किनारा कर लेते हैं वे बाद में पछताते हैं। बच्चों और विद्यार्थियों का जीवन बड़ा पुरूषार्थ और निरालस्य होना चाहिए। कष्टों के पहाड़ ऊपर गिरने पर भी सहनशीलता को प्राथमिकता देनी चाहिए। संघर्ष का दूसरा नाम ही विद्यार्थी जीवन है। जो माता-पिता विद्यार्थी काल से अपने बच्चों का जीवन संघर्षमय बनाते हैं, उन्हें मेहनत का जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं वही बच्चे आगे चलकर महान् बनते हैं और अपने लक्ष्य की ऊँचाईयों को प्राप्त करते हैं। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया है, कठिन पुरूषार्थ किया है तभी इतने वर्षों के बाद भी हम उनके जीवन से प्रेरणा लिया करते हैं। ऐसे महापुरूषों का जीवन हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ बन जाता है। जो माता पिता बच्चों का जीवन सुखमय बना देते हैं, उनमें परिश्रम करने की आदत नहीं डालते वही बच्चे आलसी होते हैं और किसी भी कार्य को करने से घबराते हैं, उनके अन्दर आत्मविश्वास की कमी होती है। ऐसे बच्चे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिए माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तानों को आत्मविश्वासी बनाएं। उनके अन्दर मेहनत करने की, पुरूषार्थ करने की भावना कूट-कूट कर भरें ताकि वे विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य को बनाएं रखे। यह माता पिता का परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतानों को कैसा बनाना चाहती है? माता-पिता जिस प्रकार का अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं वैसे ही उन्हें स्वयं भी बनना होगा। माता-पिता का जीवन बच्चों के लिए प्रेरणा व आदर्श बन जाए, ऐसा उन्हें प्रयत्न करना चाहिए। जो माता पिता संतान का निर्माण करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं वही सन्तान आज्ञाकारी, गुणवान, और धार्मिक बनती है और जो अपने इस कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं उन्हें बाद में पछताना पड़ता है। आज की इस परिस्थिति में सभी माता-पिता अपने-अपने कर्त्तव्य को समझे और अपनी सन्तानों को उत्तम, चरित्रवान, धार्मिक, गुणवान और आज्ञाकारी बनाएं।

**-प्रेम भारद्वाज**
**संपादक एवं सभा महामन्त्री**

# सुख की खोज

-ले० डा. रविदत्त शर्मा एम.ए. (वेद) आर्य समाज शामली

मनुष्य जब सृष्टि के मनोरथ पदार्थों को देखता है तो अनुभव करता है कि संसार उसका है परन्तु किञ्चित् प्रतिकूल होने पर वह व्याकुल हो उठता है। ये ऐसे क्षण हैं, जब मनुष्य सोचता है कि इस मनीहारी जगत् से सुख का कोई सम्बन्ध नहीं, सुख का स्रोत कहीं अन्यत्र है। इसकी प्राप्ति के लिये वह सारा जीवन लगा देता है। पहले तो यह विचारना है कि परमात्मा ने संसार को सुखमय बनाया है तो दु:ख कहाँ से उत्पन्न हो गया ? इस सम्बन्ध में हमारे दर्शनशास्त्र बताते हैं कि आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक-ये तीन प्रकार के दु:ख प्रत्येक मनुष्य के साथ लगे रहते हैं। यदि असावधान होकर मनुष्य इस संसार में लिप्त हो जाय तो बहुत दु:खी रहता है और मृत्युपर्यन्त सुख की श्वास नहीं लेता। शरीर तथा मन में जो दु:ख होते हैं वे दो प्रकार के (शारीरिक तथा मानसिक), आध्यात्मिक दु:ख कहलाते हैं। १. इनमें से वात-पित्त-कफ की विषमता से जो ज्वर आदि रोग होते हैं, ये शारीरिक दु:ख कहलाते हैं। २. काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-भय तथा अभीष्ट विषयों की अप्राप्ति से होने वाले दु:ख मानसिक कहे जाते हैं। आधिभौतिक दु:ख वे हैं जो शेर, चोर इत्यादि भौतिक प्राणियों से पैदा होते हैं। इसी तरह अग्नि, वायु इत्यादि से होने वाले कष्टों को आधिदैविक कहते हैं। आग लगना, बाढ़ आना, सूखा पड़ जाना, महामारी फैल जाना ये सब आधिदैविक दु:ख हैं। मानवस्वभाव ऐसा है कि निरन्तर सुख की ओर अग्रसर है। कोई भी आविष्कार, कैसा भी अनुसन्धान हो ; सबके पीछे सुख प्राप्ति का लोभ लगा हुआ है। कोई चोरी भी करता है तो सुख पाने के लिये। बड़े से बड़े अपराध के पीछे सुख की अभिलाषा जुड़ी हुई है। विदुर जी का मत है कि नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निडर होकर रहना-मनुष्यलोक के ये छ: सुख हैं-

**आरोग्यमानृण्य मविप्रवास: सद्भिर्मनुष्यै: सह सम्प्रयोग:।**
**स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवास: षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।**

संसारिक सुख के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराएँ हमारे समक्ष आती हैं। भले ही ये अपने में पूर्व न हों फिर भी कुछ मार्गदर्शन तो हो ही जाता है। जीवन का वास्तविक सुख क्या है, यह कहना कठिन है। विदुर जी की छ: बातें अवश्य ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक मान्यता यह भी है कि स्वाधीनता सुख और पराधीनता दु:ख है। इस तथ्य को भी नहीं नकारा जा सकता क्योंकि इसमें वास्तविकता है। सन्तों का सिद्धान्त है कि सन्तोष में सुख है परन्तु आज का भौतिकवादी मानव इसको स्वीकार नहीं करेगा। इतना तो स्पष्ट है कि मात्र कल्पना से सुख का संयोग सम्भव नहीं। हमें जो चाहिये उतना ही उपाय भी अपेक्षित है। प्रत्येक उपलब्धि श्रमसाध्य है। यदि हम शारीरिक सुख चाहते हैं तो आयुर्वेद का अध्ययन अनिवार्य है। हमारे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले पदार्थों की जानकारी हो, उनका ठीक-ठीक उपयोग करना जानते हों, रोग का लक्षण, निदान तथा उपचार हमें आता हो। आयुर्वेद ने विष को भी औषधि माना है। चरक आदि ऋषियों ने जो सुझाव हमें दिये हैं हम उन पर कोई ध्यान नहीं देते, परिणाम यह होता है कि चिकित्सा चलती रहती है और रोग बढ़ता रहता है। सर्वप्रथम शरीर विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। शरीर की रचना कैसी है ? कौन-सा अंग कैसे प्रभावित होता है ? विकृति शरीर में है या हमारे खान-पान में ? शरीर का कोई अंग वास्तव में कमज़ोर है या हम उसके साथ अत्याचार कर रहे हैं। क्या हम भक्ष्याभक्ष्य से परिचित हैं ? क्या हम स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी त्याज्य पदार्थ का सेवन तो नहीं करते ? कब और कैसे खाते हैं, इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है। हमारे भोजन का क्रम बना हुआ नहीं है तो कोई पदार्थ हमें पुष्टि दे यह आवश्यक नहीं। अव्यवस्थित ढंग से भोजन करने पर हम बार-बार बीमार हो सकते हैं। यदि भोजन भी ठीक लेते हैं और क्रम भी बना हुआ है तो अपेक्षित श्रम या व्यायाम नहीं करते। कुछ व्यक्ति ऐसा मानते हैं कम-से-कम काम करें, यही जीवन का सुख है परन्तु काम से बचना रोग का कारण बन जाता है। केवल औषधोपचार भी सुख का मूल नहीं है। ऐसा व्यक्ति जिसने अपने को शत-प्रतिशत चिकित्सक के हवाले कर दिया है कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। अपाला को कुष्ठ हो गया था इस कारण पति ने परित्याग कर दिया। इस पर भी अपाला निराश नहीं हुई। उसने तपस्या की तथा वन्य औषधियों का सेवन किया, फलस्वरूप वह स्वस्थ हो गयी और पति की शरण में आयी। पति ने अपाला से क्षमा माँगी और स्वीकार कर लिया। आज चिकित्सा तन्त्र इतना आगे बढ़ गया है कि मनुष्य को कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिलता। अधिकांश लोगों को अपनी प्रकृति का ही पता नहीं। वात-पित्त-कफ तीन प्रकार की प्रकृतियाँ होती हैं। प्रकृति के अनुसार उपचार किया जाय तो शीघ्र लाभ होगा। सभी व्यक्ति चिकित्सक तो नहीं बन सकते फिर भी स्वास्थ्यरक्षा के उपाय तो सबको जानने जरूरी हैं।

कुछ हमारा रहन-सहन प्रकृति के नियमों के विपरीत है। रात्रि में भरपूर भोजन करना, दिन में पूरी नींद लेना, ऋतु के अनुसार न रहना, वस्त्रों का प्रदर्शन, आधुनिकता के नाम पर नशीले पदार्थों का सेवन आदि करके हम सुख को चुनौती देते हैं। निरन्तर खाते रहने से अमाशय का थैला हर समय भरा रहेगा तो अपच होना निश्चित है, उसे कुछ अवकाश अवश्य दिया जाना चाहिये। यदि हमें जल का सेवन करना आ जाय तो हम बहुत से रोगों से बच सकते हैं। यही स्थिति वायु सेवन की है। इसके अतिरिक्त हम शरीर की बाहरी सजावट पर जितना ध्यान देते हैं यदि उतना आन्तरिक रूप से भी सावधान रहें तो बीमार होना जरूरी नहीं। वस्त्र शरीर को ढकने के लिये हैं, ऐसा सोचकर वस्त्र धारण करें। सौन्दर्य प्रसाधन का यदि स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तो उससे अपने को बचाना ही ठीक है। शरीर परमात्मा की दी हुई धरोहर है यदि हम इसके साथ अन्याय करते हैं तो परमात्मा के प्रशासन में हम दण्ड के भागी होंगे, अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्वास्थ्य को प्राथमिकता दें।

मानसिक रोगों के सम्बन्ध में मन की बात आती है। यह आश्चर्य की बात है कि जिसका कोई आकार नहीं, उसको भी रोग लग जाता है। हमारे अन्दर कुछ विकृतियाँ हैं जो रोग को जन्म देती हैं। अनावश्यक क्रोध-ईर्ष्या-द्वेष-मोह-लोभ आदि सब तनाव को पैदा करते हैं और तनाव मानसिक सन्तुलन को समाप्त कर देता है जो रोग का कारण है। हम तनाव से जितने दूर रहेंगे उतने ही स्वस्थ रहेंगे। निर्विकार मन ही स्वस्थ रह सकता है। कुछ हानि होने पर सहन न करना और निरन्तर शोक करना रोग के सदृश है। प्रसन्नचित्त रहना, चिन्ता न करना स्वास्थ्य का लक्षण है। प्रात: काल चिन्तन-ध्यान-जप आदि करने से मानसिक व्याधियों से मुक्ति मिलती है। ऋषियों ने हमारी दिनचर्या में सन्ध्योपासनादि को सम्मिलित किया है। यदि हम ऋषियों के आदेशानुसार दिनचर्या बन लेते हैं तो शरीर-मन-बुद्धि सब कुछ ठीक रहेंगे।

एक स्थिति ऐसी आती है कि शारीरिक एवं मानसिक रूप से ठीक होने पर भी मनुष्य अतृप्त रहता है; वह निरन्तर किसी अलभ्य पदार्थ की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है। यह आत्मा की भूख है क्योंकि हम आत्मा के लिये कुछ नहीं कर रहें, जो कुछ उसे चाहिये वह नहीं मिल रहा है। इस सम्बन्ध में आत्मज्ञान ही सर्वोपरि है। आध्यात्मिक दु:खों की चिकित्सा आध्यात्मिक ही होती है। हम सांसारिक व्यवहारों में समय नष्ट कर देते हैं। थोड़ा समय आत्मा के लिये बचायें तो आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त होगी।

दूसरे प्रकार का आधिभौतिक दु:ख है जो संसार में रहने वालों से होता है। इससे बचने के लिये भौतिक उपाय ही हैं। हिंसक पशुओं से बचकर रहें, सज्जनों से मेल बढ़ायें। दुष्ट ही दु:ख देता है, सज्जन नहीं। यदि हम पशु-पक्षियों से अपना सामञ्जस्य बना लेते हैं तो ये हमें सुख भी दे सकते हैं।

आधिदैविक दु:ख प्रकृति के कुपित होने पर होते हैं। भूगोल-खगोल का ज्ञान इस क्षेत्र में उपयोगी होता है। प्रकृति के साथ सामञ्जस्य हो पाना कठिन है फिर भी यथाशक्ति प्रयास करते रहना चाहिये।

( शेष पृष्ठ 6 पर )

# 'जीवात्मा के स्वाभाविक गुण व मनुष्य का स्वभाव'

-ले० मनमोहन कुमार आर्य 196 चक्खूवाला-2 देहरादून

संसार में तीन पदार्थों का अस्तित्व है जिन्हें ईश्वर, जीव व प्रकृति के नामों से जाना जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ है तथा जीव अल्पज्ञ है, यह लक्षणों व प्रमाणों से सिद्ध है। अल्पज्ञ जीव के विषय में यह भी निर्विवाद तथ्य है कि यह ज्ञान व गुण स्वभाव वाला है। ज्ञान यदि जीव का स्वभाव है तो प्रश्न है कि यह ज्ञान किस प्रकार का है जो उसका अपना अनादि काल से है और अनन्त काल तक साथ रहता है। ज्ञान गुण भी और साथ में अल्पज्ञता भी। यहां कई बार यह कठिन हो जाता है कि जीव के कौन से गुण उसके स्वाभाविक हैं और कौन से गुण अस्वाभाविक अर्थात् नैमित्तिक हैं। पशु, पक्षियों व कीट पतंग आदि योनियों में भी सबके अपने-अपने स्वाभाविक गुण होते है। जैसे पक्षियों को उड़ना आता है। उनकी बनावट भी ईश्वर व सृष्टि में उड़ने में सहायता प्रदान करने वाली है। सभी पशु तैरना जानते हैं। अरब या रेगिस्तान के किसी प्रदेश में जन्मी किसी गाय या भैंस व उनके सन्तानों को यदि जल प्रदेश में ले जाकर नदी आदि में डाल दें तो वह तैरने लगती हैं परन्तु मनुष्य के साथ ऐसा नहीं होता है। पक्षी के बारे में तो कह सकते हैं कि वह यह गुण अपने माता या पिता से सीखता है, जबकि यह संदिग्ध है, परन्तु पशुओं के बारे में तो ऐसा नहीं है। मनुष्य का बच्चा यदि तैरना नहीं सीखेगा तो जल में डालने पर वह डूब जायेगा। इससे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि तैरने का गुण मनुष्य का स्वाभाविक गुण नहीं है जबकि पशुओं का यह स्वाभाविक गुण है। प्रश्न हमारे सामने यह है कि जब एक ही जीव एक मनुष्य योनि से पशु व पक्षी आदि योनियों में आ-जा सकता है तो फिर उसके स्वाभाविक गुणों में यह परिवर्तन क्यों हो रहा है ? इसका अर्थ तो यह हुआ कि तैरना या न तैरना जीव का स्वाभाविक गुण नहीं अपितु यह जीव योनियों में बदलते रहते हैं। एक प्रकार यह भी कह सकते हैं यह स्वाभाविक गुण है तभी तो मनुष्य तैरने का प्रयास करता है और उसमें सफल भी होता है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी लिये जा सकते हैं। अब प्रश्न यह शेष रहता है कि जीव के ऐसे कौन कौन से गुण हैं जो उसके स्वाभाविक गुण माने जा सकते हैं और जो सभी योनियों में बिना किसी परिवर्तन के साथ अनुभव किये व देखे जा सकते हों। सभी जीव योनियों में सुख व दुःख की अनुभूति होती है और यह सबमें समान है। अतः इन्हें स्वाभाविक गुण माना जा सकता है। इच्छा व द्वेष भी सभी योनियों में समान रूप से परिलक्षित होते हैं, यह भी जीव के स्वाभाविक गुण कहे जा सकते हैं। इन्द्रियों के व्यवहार में विकार भी सबमें समान प्रतीत होते हैं। यह जीवात्मा के होने के लक्षण भी है। यह लक्षण जीवात्मा के गुण भी कहे वा माने जा सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में एक प्रश्न किया है कि उस जीवात्मा की शक्ति किस व कितने प्रकार की और कितनी है ? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि मुख्य एक प्रकार की शक्ति है। परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण वा भय, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन 24 चौबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति व उसका भोग करता है। महर्षि दयानन्द ने जीवात्मा की मुख्य शक्ति एक प्रकार की मानी है। वह क्या है यह इस प्रकरण में स्पष्ट नहीं है। हो सकता है कि वह उसका चेतन स्वरूप होना हो। चेतन होने के कारण उसमें ज्ञान का होना या ज्ञान व गुण ग्राहकता का स्वभाव व उसके अनुरूप कर्म वा क्रियाओं का होना है। हममें जो बल है वह आत्मा का बल है। जो पराक्रम है या होता है, वह भी आत्मा का होता है। इसी प्रकार हममें आकर्षण, प्रेरणा, गति, भय, विवेचन, क्रिया, उत्साह व स्मरण आदि का होना, हमारी जीवात्मा के कारण से है। जिसके होने से जो हो व जिसके न होने से जो न हो, वह उसी गुणी के गुण व शक्तियां होती है। आत्मा एक है परन्तु उसमें अनेक शक्तियां भिन्न-भिन्न है व मुख्य एक शक्ति जीवात्मा के चेतन स्वभाव की शक्ति है। उस शक्ति का ही उपर्युक्त 24 प्रकार की शक्तियों के रूप में विस्तार है। एक जीव, जो चेतन है, उसमें जो शक्ति है उसके 24 स्वरूप वा प्रकार है। अब इसके परिप्रेक्ष्य में जीवात्मा के स्वाभाविक गुणों की बात करते हैं। "स्व" का अर्थ अपना है और भाव का अर्थ स्व की सत्ता का होना, विचार या भावना आदि है। जीवात्मा का अपना निज भाव व सत्ता अर्थात् उसमें विचारों या भावनाओं को स्वभाव कहते हैं। इस स्वभाव में 24 प्रकार की शक्तियां है जिनका स्तर सभी जीवात्माओं में एक समान न होकर अपने जन्म व जन्मान्तरों के संस्कारों के कारण भिन्न-भिन्न होता है। मनुष्य के स्वभाव में जो भिन्नतायें हैं, वह भी भिन्न-भिन्न स्वभाव कहलाते हैं परन्तु वह मूल स्वभाव का परिवर्तित तथा संस्कारों से निर्मित स्वभाव की उन्नत व अवनत अवस्थायें हैं। हमें लगता है कि एक जीवात्मा का मूल स्वभाव है और दूसरा उसके सांसारिक सम्बन्धों, स्वाभाविक व नैमित्तिक ज्ञान से निर्मित्त उन्नत व अवनत स्वभाव है। मूल स्वभाव व जीवात्मा के स्वाभाविक गुण बदलते नहीं है परन्तु मनुष्य व अन्य योनियों में जन्म धारण करने के बाद उनमें उन्नति व अवनति से उसके मूल स्वाभाविक गुणों में परिवर्तन, उन्नत व अवनत स्वभाव, होता है। वह परिवर्तित गुण भी किसी व्यक्ति का स्वभाव ही कहे जाते हैं। अतः कई बार हम उसके परिवर्तित गुणों, उन्नत व अवनत, को भी जीवात्मा के स्वाभाविक गुण कह देते हैं जबकि वह मूल स्वभाव से, जो केवल बीज रूप में होते हैं, भिन्न हैं। हम विद्वानों पर छोड़ते हैं कि वह हमारे इस विवेचन के उचित व अनुचित होने का निर्णय करें।

अब आत्मा के लिंगों की चर्चा कर लेते हैं। न्याय दर्शन 1/1/10 के अनुसार 'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःज्ञानान्यात्मनों लिंगमिति।।' इच्छा = राग, द्वेष = वैर, प्रयत्न = पुरूषार्थ, सुख, दुःख, ज्ञान = जानना गुण हों, वह 'जीवात्मा' कहलाता है। वैशेषिक दर्शन 3/2/4 'प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवन-मनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनों लिंगानि।' के अनुसार के अनुसार प्राण = भीतर से वायु को बाहर निकालना, अपान = बाहर से वायु को भीतर लेना, निमेष = आंख को नीचे ढांकना, उन्मेष = आंख को ऊपर उठाना, जीवन = प्राण का धारण करना, मनः = मनन विचार अर्थात् ज्ञान, गति = यथेष्ट गमन करना, इन्द्रिय = इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना, अन्तर्विकार = क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं। यहां जिन्हें आत्मा के कर्म व गुण कहा गया है, हमें लगता है कि वह आत्मा के स्वाभाविक कर्म व स्वाभाविक गुण हैं। इन्हें मूल स्वाभाविक कर्म व मूल स्वाभाविक गुण भी कह सकते हैं। इन गुणों का सन्तुलन सभी मनुष्यों व प्राणियों में भिन्न-भिन्न होता है। मूल शब्द का प्रयोग हम स्वाभाविक गुण से पूर्व इस लिए कर रहें हैं कि यह आयु, अनुभव व अध्ययन आदि के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। सभी मनुष्यों व प्राणियों में जीव तो एक ही जैसा है परन्तु उनमें इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख व ज्ञान आदि सब गुण कम व अधिक, अनुकूल व विपरीत होते हैं।

हमारे सामने प्रश्न है कि किन गुणों को जीवात्मा के स्वाभाविक गुण कहा जाए और किन गुणों को नैमित्तिक गुण/नैमितिक गुण तो कुछ जाने जा सकते हैं परन्तु स्वभाविक गुणों को बताना कुछ कठिन प्रतीत होता है। किसी मनुष्य का स्वभाव, उसके गुण व व्यवहार ही मुख्यतः होते हैं। उसके शरीर की बनावट व आकृति का स्वाभाविक गुणों से अधिक लेना देना नहीं है। परन्तु कुछ किंवदन्तियां हैं जिनके अनुसार मनुष्य की आकृति व उसका व्यक्तित्व भी उसके स्वभाव को प्रभावित करता है व उसकी मुखाकृति आदि उसके स्वभाव व व्यवहार का आईना होती है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-'जीवात्मा के स्वाभाविक...

हमें यह भी अनुभव होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके नैमित्तिक गुणों से बनता है। उसके अर्थात् जीवात्मा के जो मूल स्वभाविक गुण हैं वह मनुष्य के स्वभाव के आधार हैं जिसमें उसके संस्कारों, ज्ञान, अनुभव स्वाध्याय, विचार व चिन्तन, ईश्वरोपासना व यज्ञादि कर्मों का समावेश है। जब हम जीवात्मा के स्वाभाविक गुणों का उल्लेख करते हैं तो इसका अर्थ संस्कार से रहित उसके मूल गुण, बीज रूप में, जो सदैव अपरिवर्तनीय, उन्नति व अवनति से पृथक होते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य का जो अपना-अपना भिन्न-भिन्न स्वभाव होता है उसमें मनुष्य के नैमित्तक गुणों के साथ ईश्वरोपासना व सद्कर्मों आदि से मिलने वाले ईश्वर प्रदत्त अनेक गुण भी सम्मिलित होते हैं। यह सब मिलकर ही मनुष्य का स्वभाव बनता है। किसी भी मनुष्य का स्वभाव मनुष्य के मूल स्वाभाविक गुणों से भिन्न होता है जिसमें परवर्ती ज्ञान व अनुभव आदि जुड़े व मिले हुए होते हैं।

इस लेख में हम मोक्ष का एक प्रकरण ले रहे हैं। स्वामी दयानन्द के अनुसार मोक्ष में जीवात्मा का अस्तित्व विद्यान रहता है अर्थात् उसका अभाव नहीं होता। मोक्ष में जीवात्मा को सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं। इसका तात्पर्य है कि (मुक्त जीव) जो-जो संकल्प करते हैं, वह-वह लोक और वह-वह काम प्राप्त होता है। वह मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दु:ख से रहित नहीं हो सकते। हम यहां यह कहना चाहते हैं महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में जो ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्म-वेद प्रचार, सत्य को मानना-मनवाना व असत्य को छोड़ना-छुड़वाना, ईश्वर व वेद भक्ति, पूर्वज ऋषियों का सन्मान, देश भक्ति व देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न, सभी मतों की निष्पक्ष समालोचना आदि कार्य किये, उनसे वह अवश्य ही मुक्त हो गये होगें। अब यह मानकर कि वह मुक्त हुए थे, मोक्षावस्था में वह अवश्य यह विचारते होगें मेरा मोक्ष ईश्वरोपासना, वेद प्रचार, आर्य समाज की स्थापना, असत्य का खण्डन व सत्य का मण्डन आदि कार्यों से हुआ है। उन्हें आर्य समाज को देखने की इच्छा भी अवश्य होती होगी क्योंकि जीव में इच्छा का गुण स्वाभाविक गुण है वह मोक्ष में वा बन्धन में, कभी भी, पृथक नहीं हो सकता। हमने यह जीवात्मा के स्वाभिक गुण इच्छा जो मोक्ष में भी यथावत् रहती है, के आधार पर अपने मन के भावों को लिखा है। हम आशा करते हैं कि अधिकांश आर्य बन्धु हमारे भावों से सहमत होगें। इस लेख से यह निष्कर्ष निकलता है जीवात्मा के स्वाभाविक गुण, जो मूल गुण हैं, वह सदैव उन्नति व अवनति से निरपेक्ष व अपरिवर्तनीय हैं। इनमें अच्छे व बुरे संस्कारों से परिवर्तन अर्थात् उन्नति व अवनति हुआ करती है। मनुष्य का स्वभाव उसके परिवर्तित गुणों को दर्शाता है, यह अन्तर हमें समझना है।

पृष्ठ 4 का शेष-सुख की खोज

कुछ लौकिक उपाय भी हैं। सूखा पड़े तो वृष्टियज्ञ का विधान है। बाढ़ आये तो बाँध आदि का प्रबन्ध किया जाता है। विज्ञान इतना प्रगति पर है कि भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना पहले ही मिल जाती है। जैसे वैरोमीटर से वायुमण्डल का अध्ययन किया जाता है, आँधी-तूफान की सूचना मिल जाती है। जैसे वैरोमीटर से वायुमण्डल का अध्ययन किया जाता है, आँधी-तूफान की सूचना मिल जाती है। प्राकृतिक आपदा के कुछ लक्षण भी प्रगट होने लगते हैं। जिस भूभाग से पशु-पक्षी भागने लगें उस पर मनुष्य को नहीं रहना चाहिये। जहाँ पाप-अत्याचार अधिक होते हैं वहाँ भी सुख नहीं मिलता। रहने के लिये सुखप्रद एवं अनुकूल स्थान को चुनना चाहिये-

**स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः।। -ऋ० १.२२.१५**

उक्त मन्त्र में निवास के योग्य पृथिवी के लक्षण दिये गये हैं कि सुख देने वाली हो, बैठना हो सके। प्रवेश में कोई बाधा न हो और सभी दृष्टियों से निरापद हो। वेद में उपद्रवरहित स्थान पर रहने का उपदेश किया गया है। एक मन्त्र में सर्वत्र शान्ति स्थापना की बात कही गयी है-

**द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे-देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वꣳशान्तिः, शान्तिरेवशान्तिः, सा मा शान्ति रेधि।**

**-यजु० ३६-१७**

शान्तभाव से ही शान्ति प्राप्त होती है। शान्ति ही सुख का मूल है। शान्ति का सम्बन्ध मन से है। शान्ति के साधनों को अपनाने पर ही शान्ति मिलती है। हम अपने को जितना नियमित रखेंगे उतना ही सुख प्राप्त कर सकेंगे। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में कुछ विशेषताएँ होती हैं। मनुष्य अपने लिये मनचाहा वातावरण तैयार कर सकता है। वेद में सरल मार्ग पर चलने का उपदेश किया गया है-

**सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः।।**

**-ऋ० १.४१.४**

आत्मबल से युक्त मनुष्य ही पापरहित, सुख से जाने योग्य मार्ग (ऋत) को प्राप्त करने की योग्यता रखता है। सरल मार्ग पर कोई भय नहीं है। मनुष्य का लक्ष्य है सत्य को प्राप्त करना और यह सरल मार्ग पर चलने से ही सम्भव है। इस मार्ग पर चलने वाले को कोई भय नहीं। वेद में प्रार्थना की गयी है 'सुगा नः सुपथा कृणु' हमारे मार्गों को उत्तम तथा गमन योग्य करो। सीधा मार्ग ही गमन योग्य होता है।

वैदिक संस्कृति सुख के लिये मार्ग प्रशस्त करती है। छोटा-सा उपाय है जो अनुकरण के समय कठिन एवं बड़ा प्रतीत होता है। वैदिक अनुसन्धान है कि सृष्टि को त्यागपूर्वक भोगो, कभी भी दूसरे की धनसम्पत्ति की इच्छा मत करो। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।' लिप्सा दु:ख है और त्याग सुख है। संसार को लालचभरी दृष्टि से देखने वाला कभी सुख प्राप्त न कर सकेगा और व्यर्थ ही आयु बीत जायेगी। यदि कुछ खोजना है तो अन्धकार में कभी नहीं मिलेगा, उसके लिये प्रकाश चाहिये। वेदज्ञान रूपी प्रकाश की सहायता से सुख के साधन सुलभ होंगे और वेद द्वारा बताये गये उपायों को अपनाने से मानव जाति को निश्चय ही सुख प्राप्त होगा।

## आर्य समाज जालन्धर छावनी में कैम्प

आर्य समाज जालन्धर छावनी की ओर से दिनांक 23 जून 2014 को आर्य समाज मन्दिर में हड्डियों, जोडों, कमर दर्द, घुटने का दर्द, जोड़ बदलने आदि का कैम्प लगाया गया जिसमें पिम्स के डाक्टर अमन बाँसल (एम.एस.,एम.सी.एच. ओरथो) एवं उनकी टीम ने रोगियों का निरीक्षण किया तथा जरूरतमंद मरीजों को मुफ्त में दवाईयाँ भी दी। कैम्प को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए डाक्टर एवं उनकी टीम ने आर्य समाज की प्रबन्धन टीम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस अवसर पर 108 मरीजों की जांच एवं मुफ्त दवाईयां दी गई। इस कैम्प को सफल बनाने में श्री धर्मेन्द्र अग्रवाल प्रधान के.एल. आर्य हाई स्कूल, चन्द्र गुप्ता प्रधान आर्य समाज, श्री गणपत राय सोनी, श्री अशोक जावेद, श्री जवाहर लाल महाजन मंत्री आर्य समाज, श्री अयोध्या प्रसाद अग्रवाल, श्री अशोक शर्मा, श्री सुरेन्द्र मोहन लाला, श्री कृष्ण लाल गुप्ता ऐडवोकेट, श्री बलविन्द्र कपूर, संदीप महाजन, तथा के.एल. आर्य स्कूल की अध्यापिकाओं ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने में बढ़-चढ़ कर सहयोग दिया।

**-जवाहर लाल महाजन मन्त्री आर्य समाज**

## आर्य समाज मुहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज मुहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर का वार्षिक उत्सव 15 अगस्त से 21 अगस्त 2014 तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। 15 अगस्त से 20 अगस्त तक पंडित सुन्दर लाल जी शास्त्री के प्रातः और सायं वेद प्रवचन होंगे और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के मधुर भजन होंगे। मुख्य समारोह 21 अगस्त को प्रातः 8.00 बजे शुरू होगा। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर पर पहुंच कर धर्म लाभ उठावें।

**-इन्द्र कुमार शर्मा आर्य समाज मुहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर**

# उपासना के मायने

-ले० श्री नरेन्द्र आहूजा विवेक 602 जी एच 53 पंचकूला

सरकारी सेवा से सेवानिवृत होने के उपरांत उस पद में निहित शक्तियों से विहीन होने के कारण बीमार पड़ गए अपने एक साथी को देखने गया। उनकी अर्धांगिनी ने बताया कि आजकल बीमारी की हालत में सारा दिन खाली होते हैं। सारा जीवन नास्तिक रहे लेकिन अब किसी गुरू के डेरे पर जाकर नाम धारण कर लिया है। सारा दिन माला लेकर नाम जपते उपासना करते हैं। यह बताते हुए उनकी पत्नी के चेहरे पर संतोष का एक भाव आया जिसे मैंने साफ-साफ पढ़ लिया।

परन्तु अब चिंतन करने की मेरी बारी थी। मैं सोचने लगा कि क्या अपने कष्ट की अवस्था में किसी नाम विशेष के जाप मात्र को ही उपासना कहते हैं। बीमार पड़े, व्यापार में घाटा हुआ, गृह क्लेश, पुत्र वियोग या अन्य कोई भी दु:ख या कष्ट या फिर किसी लाभ विशेष की आशा में किसी गुरू द्वारा दिया गया नाम या मंत्र और उसका गिनकर जाप करना या करवाना ही उपासना कहलाता है। कहीं ऐसी उपासना के नाम पर हम खुद को धोखा तो नहीं दे रहे या फिर ऐसा 'नाम' देने वाला 'गुरू' हमारा शोषण तो नहीं कर रहा।

बस इसी विचार को लेकर कुछ चिंतन किया जो पाठकों के समक्ष है। उपासना शाब्दिक अर्थ है निकट समीप नीचे आसन। उपासना कौन किसकी करता है ? हम मनुष्य उपासक के रूप में अपने उपास्य देव सृष्टि के रचयिता और हम मनुष्यों को प्रकृति का समस्त ऐश्वर्य बड़ी सुलभता के साथ उपयोग उपभोग के लिए देने वाले सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, ऐश्वर्यशाली उपास्य देव ईश्वर की उपासना करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि उपासना की सही विधि क्या है ? एक उपासक कैसे अपने उपास्य ईश्वर की उपासना कर सकता है।

उपासना के सामान्य अर्थ से इसकी विधि को समझने का प्रयास करते हैं। हम कैसे अपने ईश्वर के निकट पहुँचे ताकि वहां आसन लगाकर उपासना कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि पहले हमें अपनी स्थिति, अपने उपास्य ईश्वर की स्थिति और उस मार्ग का ज्ञान होना चाहिए जिस पर चलकर एक उपासक अर्थात् हम अपने उपास्य देव ईश्वर तक पहुँच सकें। अब अगला प्रश्न उठता है कि हमारी स्थिति क्या है मैं कौन हूँ और कहां पर हूँ। मैं अक्सर कहता हूँ कि यह मेरा हाथ है, मेरी आँखे हैं, यह मेरा शरीर है अर्थात् मेरी यह भौतिक अवस्था मनुष्य का चोला, शरीर मेरा साधन है। मुझे यह साधन अर्थात मनुष्य का शरीर परमपिता परमेश्वर न्यायकर्त्ता ने मेरे पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर न्याय तुला पर तोलते हुए एक साधन के रूप मुझे प्रदान किया। अर्थात् मैं इस साधन मनुष्य शरीर की प्राप्ति से पूर्व भी था और पश्चात भी रहूंगा। इस चिंतन से स्पष्ट हुआ कि मैं एक जीवात्मा हूं जो कि इस शरीर का शरीरी, देह का देही, रथ का रथी अर्थात् इस मनुष्य शरीर रूपी साधन का अधिपति स्वामी एक साधक हूँ। मुझे यह साधन मेरे पूर्व के कर्मों के आधार पर न्यायकर्त्ता ईश्वर ने प्रदान किया है। मेरे इस साधन का उद्देश्य अपने उस साध्य अर्थात् ईश्वर को पा लेना है।

अपनी स्थिति को जानने के उपरांत अपने उपास्य ईश्वर की स्थिति को जान लेना आवश्यक है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम मंत्र **''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्''** में ईश्वर का पता दिया गया है। आर्य समाज के दूसरे नियम में महर्षि दयानन्द ने ईश्वर को सर्वव्यापी और कण-कण में विद्यमान बतलाया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि उपासक को अपने ईश्वर उपास्य की उपासना के लिए कहीं किसी गुरू विशेष के डेरे या तथाकथित तीर्थ पर भटकने की आवश्यकता नहीं है। योगेश्वर कृष्ण ने ईश्वर को सर्वव्यापी के साथ ही **''ईश्वर सर्वभूतानां हृदयेशे तिष्ठति''** कहकर ईश्वर को अति सूक्ष्म रूप में हम सभी जीवात्माओं में विद्यमान भी बतलाया। महर्षि दयानन्द ने भी ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए सर्वान्तर्यामी बतलाया। इससे तो यह स्पष्ट हो गया कि ईश्वर हमारे सबसे निकट आत्मा में ही विद्यमान है। ईश्वर से हमारी दूरी आंख से भौंह की दूरी से भी कम है। हमारे निकटस्थ यदि कोई है तो वह हमारा ईश्वर ही है।

जब मैं और मेरा ईश्वर मेरे ही अन्दर एक साथ विद्यमान है तो फिर उपासना तो स्वत: हो गई। लेकिन यथार्थ इससे भिन्न है। यह ठीक है कि ईश्वर हमारे निकटस्थ है पर क्या हम खुद अपने निकटस्थ रहने वाले ईश्वर के पास हैं। हमारी स्थिति ठीक वैसी है जैसे बस में यात्रा करते हुए खिड़की से बाहर देखते निहारते हमें अपने सहयात्री की कोई खबर नहीं रहती। हम ईश्वर प्रदत्त प्रकृति के ऐश्वर्यों के भोग और दोहन में इतने निमग्न हो जाते हैं कि अपने निकटस्थ ईश्वर का आभास भी नहीं कर पाते और इतने कृतघ्न हो जाते हैं कि इस समस्त ऐश्वर्य के प्रदाता का धन्यवाद भी नहीं करते। तेन त्यक्तेन भुंजीथा अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करने के स्थान पर हम तो भोगवाद में डूब जाते हैं। हमारी हालत मधु में डूबकर तड़पती मधुमक्खी सरीखी हो जाती है जो प्रकृति के ऐश्वर्य के भोग में फंसकर साधन आधीन हो जाते हैं। यह साधन आधीन होने की हालत पराधीन से भी बुरी है। साधन आधीन में तो हम चेतन होकर भी जड़ के अधीन रहते हैं। ईश्वर से हमारी दूरी ना तो काल की है ना ही स्थान की अपितु केवल हमारी अज्ञानता की है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के पांचवें मंत्र में कहा गया है **''तद्दूरे तद्वन्तिके''** अर्थात् वह ईश्वर तो हमारे अत्यंत निकट है लेकिन अपनी अज्ञानता अबोधता के कारण हम उस ईश्वर से बहुत दूर हैं। वह ईश्वर तो हमारे पास है और हम उस ईश्वर को अपनी अज्ञानता अबोधता के कारण पूरा जीवन बाहर ना जाने किस किस डेरे तीर्थ पर ढूंढते मारे मारे फिर रहे हैं।

अत: उपासना के लिए आवश्यक है कि हम अज्ञानता को दूर करके अपने ईश्वर और अपनी स्थिति को समझें और अपने ईश्वर के निकट रहें। महर्षि दयानन्द उपासना को आर्योद्देश्यरत्नमाला में परिभाषित करते हुए लिखते हैं जब मनुष्य का आत्मा आनन्दस्वरूप परमात्मा के आनन्द में निमग्न होकर नर्तन करने लगे उसे उपासना कहते हैं। यहां आनन्द में नर्तन करने का अभिप्राय है कि हम ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन करें। इसके लिए प्रत्येक स्थिति में हमें अपनी अन्तरात्मा से आने वाली प्रत्येक ईश्वरीय प्रेरणा का पालन करें। इसके लिए हम कह सकते हैं

**मेरे मन में चल रहा, देवासुर संग्राम।**

**रहती बस यह कामना, जीतें सदा श्रीराम।।**

यहां श्रीराम दैवीय भावनाओं की विजय का प्रतीक है कि प्रत्येक कार्य को करने के लिए उद्यत होने से पूर्व मन में उत्पन्न होने वाली संकल्प विकल्प की स्थिति में सदैव दैवीय भावनायें आसुरी शक्तियों पर विजयी हों अर्थात् हम ईश्वरीय प्रेरणा अंतरात्मा की आवाज पर केवल निस्वार्थ भाव से परोपकार के कार्य किया करें और हमारे कार्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष की भावनाओं से प्रेरित ना हों। जब हम जीवन के प्रत्येक कार्य में ईश्वरीय आज्ञा का पालन करेंगे तो हम कह सकते हैं कि उपासना करते हुए उपासक और उपास्य देव निकट हो गए हैं।

## वेदवाणी

# अमरता का केन्द्र

माता रुद्राणी दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।

-ऋ ८/१०१/१५

**विनय**-हे मनुष्य ! तू गौ को कभी मत मार। इस निरपराध बेचारी गौ को कभी मत मार। तू चेतनावाला है, तुझे परमात्मा ने कुछ समझ, अक्ल, बुद्धि दी है। इसलिए तुझे कहता हूँ-तू गो-घात कभी मत करना ? तू अपनी समझ का तनिक-सा उपयोग करेगा तो तुझे पता लग जाएगा कि यह गौ यद्यपि बड़ी भोली, बेचारी, बिलकुल निर्दोष है, इसलिए इसे कोई भी कभी मार सकता है, मारने से यह मर जाएगी, कोई प्रतिरोध न करेगी, परन्तु साथ ही यह इतनी महत्त्वशालिनी है, सब देवों की सम्बन्धिनी और अमरपन का एक केन्द्र है कि इसका मारना अपना नाश करना है, इसका घात करना आत्मघात है। यह गौ कहीं और नहीं, हमारे ही अन्दर है। यह 'अदिति' आत्म-शक्ति है, वाणी है, अन्तरात्मा की वाणी है, अन्दर की आवाज़ है। तुम इसे दबाओगे तो यह चुपचाप दब तो जाएगी, परन्तु इससे तुम्हारा आत्मा नष्ट हो जाएगा। यह 'अदिति' वाणी (यह आदित्यों की बहिन) वसुओं-आत्मा की वासक अग्नियों-से प्रकट होती है (इनकी पुत्री है) और मनुष्य के सब रुद्रों-प्राणों-की और सब चेष्टाओं की माता है। यह ऐसी अमृत वस्तु है कि इसे मारने का यत्न करने वाला स्वयं मर जाता है, और इसकी रक्षा करने वाला सुरक्षित रहता है। इसी अन्दर की 'गौ' की प्रतिनिधि आधिदैविक में भूमि है, आधिभौतिक में राष्ट्रदेवी है और पशुओं में गौ माता है। हे चेतनावाले मनुष्य ! तू समझ कि इन गौओं का भी घात कितना भयङ्कर परिणाम लाने वाला है। भूमि, राष्ट्र और गौओं की रक्षा करने में ही मनुष्यों की, मनुष्य-जाति की रक्षा है। देखना, इस भूमि-गौ की, इस राष्ट्र-गौ की तथा इस गौ-पशु की तनिक भी हिंसा करने वाला कर्म तुझसे न हो। जब कभी इन सर्वथा अप्रतिरोधिनी गौओं की हिंसा करने का प्रलोभन आये तो याद कर लेना कि ये सब अमृत की नाभियाँ हैं और अपने-अपने क्षेत्र के आदित्यों, वसुओं और रुद्रों से सम्बन्धित दिव्य शक्तियाँ हैं। इनको मारकर तू कभी फूल-फल नहीं सकता, परन्तु अन्त में सब बाह्य गौओं की गौ तो अन्तरात्मा की वाणी है। इस गौ को तो कभी मत छेड़ना, इसे सदा पालना, पोसना और इसकी आज्ञा को सदा मानना। अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी इस गौ की रक्षा करना। इसे तनिक भी नहीं दबाना। यदि इस अमृतनाभि 'अदिति' गौ का रक्षण, पोषण और वृद्धि होती गई तो तू भी एक दिन अमृत हो जाएगा, देवों का राज्य पा जाएगा। देखना, इस सर्वथा अप्रतिरोधिनी परम शान्त गौ का तेरे यहाँ तनिक भी तिरस्कार न होने पाये, इसे तनिक भी क्षति न पहुँचने पाये।

**साभार-वैदिक विनय, प्रस्तुति-रणजीत आर्य**

## गुरू पूर्णिमा महोत्सव

गुरू विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट एवं गुरूकुल करतारपुर में गुरू पूर्णिमा दिवस 12 जुलाई 2014 शनिवार को बहुत ही श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। कार्यक्रम का शुभारम्भ हवन यज्ञ के द्वारा किया जाएगा। गुरू पूर्णिमा का मुख्य कार्यक्रम प्रातः 9:30 से 1:30 बजे तक होगा। इस उत्सव के संचालक गुरूकुल करतारपुर के कुलपति डॉ. स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती होंगे। कार्यक्रम की अध्यक्षता सीकर(राजस्थान) लोकसभा क्षेत्र से नवनिर्वाचित सांसद मान्य स्वामी सुमेधानन्द जी सरस्वती करेंगे। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता आर्य जगत् के प्रसिद्ध उच्चकोटि के विद्वान् आचार्य श्री वेद प्रकाश जी श्रोत्रिय दिल्ली होंगे। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री सत्यपाल जी पथिक के भजन होंगे। गुरू पूर्णिमा के इस अवसर पर गुरूकुल के पूर्व छात्र तथा इस समय विद्या ग्रहण कर रहे छात्र गुरूजनों के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करेंगे। सभी धर्मप्रेमी आर्यजनों से प्रार्थना है कि वे अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों सहित इस कार्यक्रम में पधार कर इसकी शोभा को बढ़ाएं।


गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट,
रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे,
मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

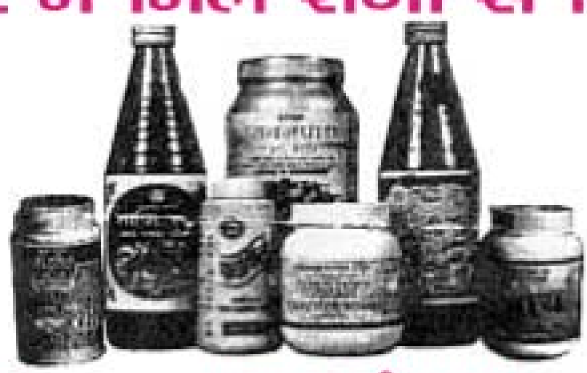

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताजगी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व
थकान में अत्यंत उपयोगी।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, जिला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871


श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।